क्या जीन परिवर्तन दुनिया की भूख मिटा देगा?

नीलम परेरा

दुनिया की आबादी में प्रति वर्ष 7.8 करोड़ की वृद्धि हो रही है। अर्थ पॉलिसी इंस्टीट्यूट के लेस्टर ब्राउन ने अनुमान व्यक्त किया है कि इस बढ़ती आबादी का पेट भरने के लिए हमें 1640 वर्ग कि.मी. ज़मीन की ज़रूरत होगी। वर्ष 2012 तक भारत की आबादी में 50 करोड़ की वृद्धि होगी और हमारी आबादी 1.6 अरब हो जाने का अंदेशा है। अमेज़न क्षेत्र, कॉन्गो और इंडोनेशिया के जंगल तो निर्वनीकरण के दबाव में हैं। यहां निर्वनीकरण का प्रमुख कारण खेती के लिए ज़मीन साफ करना और बढ़ती आबादी की इमारती लकड़ी की ज़रूरत पूरी करने का दबाव है। हाल ही में पूरी दुनिया में खाद्यान्न से जैव-ईंधन के निर्माण के अलावा निर्यात पर प्रतिबंध और अतिरिक्त टैक्स के कारण भी खाद्यान्न संकट गंभीर हुआ है।

आने वाले 50 वर्षों में 9 अरब लोगों के लिए खाद्यान्न सुरक्षा की समस्या को सुलझाने के लिए यह माना गया है कि कृषि अनुसंधान व जिनेटिक परिवर्तन एक समाधान प्रस्तुत कर सकते हैं। वर्ष 2002 में दुनिया भर की बायो-टेक कंपनियों और विश्व बैंक के मिले-जुले प्रयासों से *दी इंटरनेशनल असेसमेंट ऑफ एग्रीकल्चरल साइन्स एण्ड टेक्नॉलॉजी फॉर डेवलपमेंट* (आई.ए.ए.एस.टी.डी.) का गठन हुआ था। इसका उद्देश्य विकासशील देशों के संदर्भ में जिनेटिक रूप से परिवर्तित (जिरूप) फसलों की स्थिति का पता लगाना था। आई.ए.ए.एस.टी.डी. ने वर्ष 2005 में अपने अजेंडे को विस्तार देते हुए उसमें खाद्यान्न उत्पादन के अलावा सामाजिक न्याय व पर्यावरण के मुद्दे भी शामिल कर लिए हैं।

असेसमेंट ने इस विवाद को जन्म दिया कि जिरूप फसलों की हिमायत की जाए या नहीं। जिरूप खाद्य व फसलों को लेकर जो विवाद हैं, उनमें मानव व पर्यावरण की सुरक्षा, बौद्धिक संपत्ति अधिकार, नैतिकता और पर्यावरण संरक्षण प्रमुख हैं। जिनेटिक इंजीनियरिंग के विरोधियों को डर है कि प्रयोगशाला से बाहर खुले पर्यावरण में इस टेक्नॉलॉजी का उपयोग कृष्य व वन्य दोनों तरह की इकोसिस्टम के लिए खतरा पैदा कर सकता है।

जिरूप खाद्य जिरूप फसलों से तैयार किए जाते हैं, जिनके डी.एन.ए. को जिनेटिक इंजीनियरिंग के ज़रिए बदल दिया गया है। जिरूप खाद्य सबसे पहले 1980 के दशक में बाज़ार में लाए गए थे। सबसे आम जिरूप खाद्य वनस्पतियों से प्राप्त किए जाते हैं। जैसे सोयाबीन, मक्का, कैनोला, और कपास्या तेल। अन्य जिरूप फसलें हैं कीटों से रक्षित मक्का, और खरपतवारनाशी-रोधी मक्का, कपास तथा रेपसीड की विभिन्न किस्में। जिरूप फसलें यू.एस. के अलावा अर्जेंटाइना, ब्राज़ील, दक्षिण अफ्रीका, भारत व चीन जैसे कृषि प्रधान देशों में उगाई जाती हैं। जैव टेक्नॉलॉजी विज्ञान ने विकासशील देशों में काफी तरक्की की है। जिरूप चावल की एक नई किस्म के विकास के साथ चीन जैव टेक्नॉलॉजी में एक प्रमुख शोध केंद्र के रूप में उभर रहा है। भारत में भी 2002 से जिरूप फसलों में लगातार वृद्धि हुई है। अफ्रीका में गेट्स फाउंडेशन ने लाखों डॉलर एक ऐसे जिनेटिक इंजीनियरिंग प्रोजेक्ट में लगाए हैं, जो खाद्यान्न फसलों में पोषक तत्वों की मात्रा बढ़ाने की दिशा में प्रयास करेगा।

अलबत्ता, गैर सरकारी संगठनों, जनहित में कार्यरत समूहों और धार्मिक संगठनों ने जिरूप खाद्य व पर्यावरण तथा मानव स्वास्थ्य पर उनके असर को लेकर चिंता व्यक्त की है। यू.के. में खाद्य निर्माताओं व सुपर मार्केट्स ने जिरूप घटकों के उपयोग से इन्कार कर दिया है। कृत्रिम खेती ने 40 खरपतवारों को विलुप्ति की कगार पर पहुंचा दिया है। इसके चलते शंका उत्पन्न हुई हैं कि ये फसलें शेष वन्य जीवन पर भी प्रतिकूल असर डालेंगी। अध्ययनों से पता चला है कि जिरूप फसलें अन्य जीवों पर प्रतिकूल असर डाल सकती हैं। यू.के. की एक परियोजना *बॉटेनिकल एण्ड रोटेशनल इम्प्लिकेशन्स ऑफ जिनेटिकली मॉडिफाइड हर्बिसाइड टॉलरेंस* (ब्राइट) *लिंक* प्रोजेक्ट का मत है कि पर्यावरण पर असर के संदर्भ में जिरूप फसलें अन्य पारंपरिक

फसलों से भिन्न नहीं हैं। मगर इस अध्ययन की आलोचना यू.के. सरकार के स्वतंत्र वन्य जीवन सलाहकार इंग्लिश नेचर द्वारा की गई है। इसका कहना है कि जिरूप फसलें वन्य जीवों और खरपतवारों दोनों को प्रभावित करती हैं। एक संभावना यह भी है कि जिरूप फसलों और खरपतवारों के बीच प्रजनन के ज़रिए सुपरवीड्स तैयार हो जाएंगी। यदि खरपतवारनाशी-रोधी फसलों पर बहुत अधिक मात्रा में ऐसे रसायनों का छिड़काव किया गया, तो हो सकता है कि इसके असर से कोई भी जंगली वनस्पति जीवित न रहे। यदि जिनेटिक परिवर्तन के ज़रिए पौधों को कीटों के लिए विषैला बनाया गया तो यह कीटों के अलावा पक्षियों के लिए भी घातक सिद्ध हो सकता है। इस बात की कई रिपोर्ट्स हैं कि जर्मनी व यू.एस. में जिरूप फसलों ने मधुमक्खियों की आबादी को इस कदर प्रभावित किया है कि खेती और अर्थ व्यवस्था दोनों पर प्रतिकूल असर पड़ा है। जिरूप फसलों को उगाने व उपभोग करने से मानव स्वास्थ्य पर भी एलर्जी जैसे प्रभाव हो सकते हैं।

जिरूप फसलें तैयार करते समय फसल के जीनोम में कोई अन्य जीन जोड़ने के लिए किसी वाहक जीव का उपयोग किया जाता है। इस वाहक जीव का अपना जीनोम होता है जिसमें कई जीन्स होते हैं। इन जीन्स की निरापदता को लेकर जानकारी बहुत कम है। हमारे पाचन तंत्र में डी.एन.ए. पूरी तरह विघटित नहीं होता। आंतों में पलने वाले बैक्टीरिया ऐसे जीन्स हासिल कर सकते हैं। इससे एंटीबायोटिक प्रतिरोध फैलने की संभावना बढ़ जाएगी। जैविक रूप से सक्रिय घटकों के सेवन से शरीर की चयापचय क्रिया प्रभावित हो सकती है। और इसका पता सिर्फ नवीनतम स्क्रीनिंग तकनीकों से ही चल पाएगा। फिलहाल जो विष वैज्ञानिक जांच तकनीकें उपलब्ध हैं वे मात्र पौष्टिक तत्वों और ज्ञात विषों के विश्लेषण पर निर्भर हैं। लिहाज़ा किसी भी जिरूप फसल को खाद्यान्न में शामिल करने से पहले बेहतर निदान तकनीकों की ज़रूरत होगी।

ऐसा दावा किया गया है कि जिरूप फसलें कीट-रोधी होती हैं व अधिक उपज देती हैं और आने वाले दिनों में खाद्यान्न की पूर्ति का एक महत्वपूर्ण साधन होंगी। *दी मार्च ऑफ रीज़नः साइन्स, डेमोक्रेसी एण्ड दी न्यू फंडामेंटलिज़्म* के लेखक डिक टेवर्न कहते हैं कि ''जिरूप विरोधी लॉबी ने युरोप में खेती का बहुत नुकसान किया है'' और ''इन फसलों को उगाने में हुए विलंब ने विकासशील देशों में लाखों जानें ली हैं''।

मगर तथ्य यह है कि जिरूप के हिमायती भोजन की अनुपलब्धता और कुपोषण के बीच जो सीधा सम्बंध बताते हैं, वह वास्तव में है नहीं। अन्य विश्लेषणकर्ता गरीबों की भुखमरी के लिए खाद्यान्न की अत्यंत ऊंची कीमतों और उपजाऊ ज़मीन के बड़े-बड़े हिस्सों के कुप्रबंधन को दोषी मानते हैं। पूर्वी अफ्रीका व मध्य अमरीका की उपजाऊ भूमि का सही उपयोग किया जाए और ड्रिप सिंचाई जैसी तकनीकों का उपयोग किया जाए, तो विश्व में भूख की समस्या से निपटा जा सकता है। वैश्विक खाद्यान्न संकट को भूमि के कुशल प्रबंधन से सुलझाया जा सकता है। दरअसल लोगों के जीवन पर ज़्यादा असर तो सामाजिक-राजनैतिक संरचना का होता है। यू.के. के एक गैर सरकारी संगठन फ्रेंड्स ऑफ अर्थ का मत है कि खेती का भविष्य हाई-टेक जिरूप फसलों में नहीं बल्कि सुरक्षित व पौष्टिक खाद्यान्न उत्पादन की पारंपरिक तकनीकों में है जो ग्रामीण जीविका और पर्यावरण दोनों को सुरक्षा प्रदान कर सकती हैं।

जहां ग्रीनपीस पर्यावरण में जिरूप जीवों का विरोध करता है, वहीं बायो-टेक कंपनियां नहीं मानती हैं कि जैविक कृषि जैसे टिकाऊ उपाय दुनिया के कृषि उत्पादन को बढ़ाने में कोई भी योगदान दे सकते हैं। आज जब दुनिया में जिरूप खाद्य को लेकर गंभीर मतभेद हैं, तब आई.ए.ए.एस.टी.डी. का मत है कि हमें पर्यावरण के मुद्दों को संबोधित करने, पारंपरिक सामुदायिक ज्ञान के अंगीकरण, गरीब किसानों के लिए अवसर उत्पन्न करने और नीति निर्धारण में समाज वैज्ञानिकों को जोड़ने के लिए 'एग्रो-इकॉलॉजिकल' रणनीतियों का विकास करना चाहिए।

यह तो सही है कि जिनेटिक इंजीनियरिंग भावी पीढ़ी की ज़रूरतों को पूरा करने की एक संभावना पैदा करती है मगर साथ ही यह भी ज़रूरी है कि जैव विविधता के संरक्षण के लिए पर्याप्त उपाय भी किए जाएं। ***(स्रोत फीचर्स)***